Review Of Research
Vol. 3 | Issue. 10 | July. 2014
Impact Factor : 2.1002 (UIF)
ISSN:-2249-894X
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

"आठवे दशक के हिंदी नाटकों में प्रतिबिंबित परिवार"

डॉ. सौदागर साळुंखे
मा. ह. महाडिक कला व वाणिज्य महाविद्यालय, मोडनिंब.

परिवार' मनुष्य के सामाजिक जीवन की प्रारंभिक पाठशाला है। जिसे व्यक्ति के वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य माना गया है। आधुनिक जीवन दृष्टि, भौतिकवाद का आग्रह, स्त्री-पुरुष समानता शिक्षा-दीक्षा, स्त्री-शिक्षा, यौन स्वातंत्र्य की लालसा से सामजिक मूल्यों में तीव्र परिवर्तन हो रहे हैं जिससे संयुक्त एवं केंद्रीय परिवार, विवाह, दांम्पत्य आदि से संबंधित रस्मों-रिवाज एवं प्रथाएँ टूट रही हैं। सामंजस्य का अभाव, महानगरीय जीवन दृष्टि के परिणास्वरूप, दांपत्य संबंधों में निहित एकनिष्ठता, समर्पन, त्याग, सेवा, प्रेम आदि उदात्त शाश्वत मूल्यों का हनन हो रहा है । आर्थिक परिस्थितियों से जूझते हुए परिवार के आत्मीय संबंधों में दांपत्यगत दूरियाँ, रिक्तता बोध और एकाकीपन की वजह से स्नेहहीनता आ गई है । संयुक्त परिवारों में जो आपसी संबंधों का प्रचलन था उनका संबंध नाममात्र रह गया है। परिवार के स्वरूप में नित्य-नए परिवर्तन हो रहे हैं, उनमें आर्थिक, नैतिक एवं सौंदर्य तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विघटन भी हो रहा है। आधुनिक समाज में पारिवारिक संबंधों के सीमित स्वरूपों की वजह से परिवार टूट रहे है 1 परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की समस्याए जन्मले रही है 1 प्रारंभ से लेकर आज तक पाश्चात्य विचारधारा प्रणाली के प्रभाव के कारण परिवार, परिवारों की रूपरेखा, स्वरूप आदि में कितना परिवर्तन हो रहा है?

अनन्य साधारण महत्त्व रखने वाले परिवार संस्था का, पारिवारिक आत्मीय संबंधों का, परिवार को विकसित करनेवाले घटकों का चित्रण किया है। नाटकों में परिवार का परिचय पाना तथा समाज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण परिवार संस्था का आठवें दशक के नाटककारों में से- शंकर शेष, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, रमेश बक्षी, राजेंद्रकुमार शर्मा, गोविंद चातक, सुरेशचंद्र शुक्ल, मृदुला गर्ग, गिरिराज किशोर, राजकुमार, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, रेवतीशरण शर्मा, ललित सहगल और बलराज पंडित के नाटकों में ओ चित्रण हुआ है। वास्तव में परिवार समाज की लघु ईकाई है। जो कुछ समाज में घटित होता है, वही परिवार में भी होता है। समाज में मूल्य किस प्रकार परिवर्तित हो रहे हैं। सन् १९७१ से १९८० तक के आठवें दशक के हिंदी नाटको में क्रमानुसार- १. एक और द्रोणाचार्य, बिन बाती के दीप, घरौंदा, २. बंदीनी, कार टकर, टूटते परिवेश, ३. गंगामाटी, करफ्यु, मि. अभिमन्यु, व्यक्तिगत, ४. रमेश बक्षी, देवयानी का कहना है, ५. कायाकल्प, एक से

बढ़कर एक, ६. केंकडे, काला मुंह, ७. कुत्ते, भूमि की ओर, ८. एक और अजनबी, ९. घास और घोड़ा, १०. चक्कर, ११. अनुष्ठान, १२. दीपशिश्वा, १३. निदान, १४. पाँचवाँ संवार और अन्य महत्त्वपूर्ण नाट्यकृतियों का चयन किया ।

साहित्यकार परिवार और समाज का चित्रण करके उसकी गतिविधियों को रेखांकित करते हैं । "आठवें दशक के हिंदी नाटको में प्रतिबिंबित परिवार" इस विषय के अंतर्गत परिवार का सैद्धांतिक विवेचन और विवेच्य नाटकों में चित्रित परिवार के स्वरूप का विवेचन करने के उपरांत अंततः ये तथ्य उभरकर सामने आए कि परिवार सामाजिक जीवन की प्रारंभिक पाठशाला है। नवजात शिशू अपनी जीवन यात्रा का प्रारंभ परिवार से करता है। व्यक्ति के लिए वैयक्तिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से परिवार को अनिवार्य माना गया है। परिवार का दूसरा पक्ष है दांपत्य जीवन। परिवार की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणाएँ, परिवार का उद्गम, परिवार का कार्य मानवीय संवेदनाओं के लिए अत्यंत महत्ता रखता है । परिवार संस्था में संयुक्त परिवार व्यवस्था एक प्रकार से चक्रवत व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न कार्यों के लिए सदैव तरुणों और वयस्कों की संपूर्ति होती रहती है, परंतु आधुनिक समाज व्यवस्था में संयुक्त परिवार विघटित होने लगे हैं । उसके कई कारण हैं जैसे- परिवार का आकार, राष्ट्रीय आंदोलन, औद्योगिकरण, नागरीकरण, शिक्षा, दीक्षा, यातायात के साधन, बढ़ती हुई महंगाई, स्वार्थ, व्यक्ति का आत्मकेंद्रित होना आदि । परिवार विकास के महत्त्वपूर्ण पक्षों में परिवार में दांपत्य संबंध के साथ-साथ दांपत्त्येतर संबंधों का महत्त्व अत्याधिक रहा है, जिसमें पिता एवं संतान, माता एवं संतान, भाई- बहन, बहन-बहन, सास-बहू, ससूर - बहू, देवर-भाभी- ननंद, देवरानी-जिठानी, बुआ-भतीजी आदि । संयुक्त परिवारों में उपर्युक्त संबंधों का प्रर्याप्त प्रचलन था, परंतु संयुक्त परिवार का जैसे- जैसे विघटन होता गया । परिवार का संबंध अथवा उसका स्वरूप अत्यंतिक सीमित रहा । परिणामस्वरूप एकल या केंद्रीय परिवारों का जन्म हुआ। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक के विविध संस्कारों में परिवार एक प्रक्रिया के रूप में अहं भूमिका निभाता है ।

समस्त मानवता के संपूर्ण जीवन में परिवार अहं एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार संस्था का वर्तमान स्वरूप और उसके भविष्य पर विचार विमर्श पश्चात् आधुनिक युग में बदलते पारिवारिक संबंध और विवेच्य नाटकों में पारिवारिक संबंधों का अध्ययन होना आवश्यक था। इस अध्याय में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक परिवार के ढाँचे में परिवर्तन ही परिवर्तन दिखाई देता आया है। व्यक्ति का व्यक्तित्व गठन करनेवाला परिवेश अंतर्बाह्य रूप से बदलता है । जिसके प्रभाव से व्यक्ति, परिवार और समाज बदलते हैं। आधुनिक समाज में दांपत्य जीवन में ही नहीं रिश्ते-नातों में भी आत्मीयता के बदले नाटकीयता आ गई है। नारी जीवन में बदलाव आया है। वह बिल्कुल आधुनिका बन गई है। समाज में कुटनीति एवं धोखेबाजी के साथ-साथ भ्रष्टाचारी तथा रिश्वतखोरी बढ़ती हुई पाई जाती है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक एवं पारिवार स्तर पर नैतिक मूल्यों में काफी गिरावट आ चुकी है।

पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण एवं के प्रभाव कारण परिवेश सांस्कृतिहीन बन गया। जिससे शिक्षा, शिक्षा संस्था एवं साहित्य पर पड़े गहरे प्रभाव के कारण युवकों में दिशाहीनता आ गई है । दिशाहीन युवकों को नौकरी के भीषण समस्याओं से संघर्ष करना पड़ रहा है । पाश्चात्य प्रभाव के कारण नारी में जहाँ पारिवारिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर सार्वजनिक क्षेत्रों में भी पुरुषों के साथ बराबरी करते हुए पाई जाती है। वर्ग संघर्ष के कारण वैचारिक संघर्ष पाया जाता है तो अंधश्रद्धा को बढ़ावा भी इन्हीं ढोल बजानेवालों ने दिया है । यातायात की सुविधा, औद्योगिकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण, जनसंख्या वृद्धि के कारण वैवाहिक धारणाएँ बदलती हुई दिखाई देती हैं। व्यक्ति स्वातंत्रता की आड में यौन स्वच्छंदता पनपती रही

जिससे दांपत्य जीवन में परिवार एवं एक-दूसरे के प्रति समर्पण के अभाव में यांत्रिकता आ गई है। परिवार के परंपरागत धारणा में परिवर्तन हुआ है। परिवारों के विकेंद्रीकरण से संबंधों में परिवर्तन आया जिससे आधुनिक समाज के आधुनिक परिवार परंपरा एवं रूढ़ियों से ही नहीं बल्कि परिवार से ही मुक्ति की तलाश में भटकते हुए पाए जाते हैं।

आठवें दशक के नाटकों में नाटककारों ने संयुक्त एवं केंद्रीय परिवारों में उच्चवर्गीय, मध्यवर्गीय तथा निम्नवर्गीय परिवार के विवेचन के साथ दांपत्य जीवन, दांपत्तेतर संबंधों का विस्तृत विवेचन किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न परिस्थितियों से समाज में परिवर्तन हुए, उनका गहरा प्रभाव परिवार संस्था पर पड़ा । सफल दांपत्य जीवन के लिए साहचर्य, सेवाभाव का होना जरूरी है । पारस्पारिक संबंधों में एक-दूसरे का सम्मान ही नहीं, एक-दूसरे के प्रति अटूट स्नेह होना जरूरी है। एक-दूसरे के प्रति सम्मान एवं आदर के साथ दोनों का परिवार के प्रति आत्मसमर्पन का भाव होना आवश्यक है। एक निष्ठता एवं पति परायनता की कमी ने यौनाचार को बढ़ावा दिया है। विनोदभाव एवं मानसिक संतुष्टि से दांपत्य जीवन में श्रद्धामय प्रेम पनपता है । असफल दांपत्य जीवन में संबंधों का बनावटीपन, तनाव, तनाव, असंतोष असंतोष कटूता, व्यसनाधीनता, कामेच्छा की तीव्रता, अर्थाभाव, स्नेहहीनता, व्यक्तिस्वातंत्र्य की उपेक्षा, अहंभाव, ठंडापन और वैचारिक असमानता के कारण दांपत्य में असंतोष फैला है। दांपत्य जीवन को विषैला बनाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका दांपत्तेतर संबंधों ने निभाई है जिसके कभी अच्छे तो कभी बुरे परिणाम निकल आए हैं। मानव जीवन में दांपत्य के अलावा अन्य दांपत्यत्तेतर संबंध निर्माण होते हैं। जैसे- पिता-पुत्र का संबंध, पिता-पुत्री का संबंध, माता एवं पुत्र-पुत्री का संबंध, सास बहू का संबंध, बहू-ससुर का संबंध, देवर भाभी का संबंध तथा अन्य पारिवारिक संबंध ।

संयुक्त परिवार बाह्य घटकों के परिणामस्वरूप विघटित हो गए हैं। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई- बहन, भाई-भाइयों के आत्मीय संबंधों में स्नेहहीनता आ गई है। स्वार्थ, आत्मकेंद्रीत प्रवृत्ति, ईर्षा, द्वेष और जलन में इन रिश्तों में कटुता निर्माण की है।

आलोच्य नाटकों में टूटते-बिखरते पारिवारिक जीवन-संबंधों के प्रमुख कारणों से पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं सौंदर्य तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विघटन हो रहा हैं । परिवार ही वही पाठशाला है, जहाँ उदात्त जीवन मूल्योंको ग्रहण किया जाता है। भारतीय हिंदू समाज में विवाह के प्रति एक विशिष्ठ धारणा है। विवाह को पूनित व आत्मिक संबंध के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः विवाह विच्छेद की कल्पना कठिन मानी जाती थी परंतु वर्तमान युग में विवाह संबंधी संस्कार एक तो खंडित हो रहे हैं या परिवर्तित रूप में सामने उपस्थित हो रहे हैं। अतः पुनर्विवाह, प्रेमविवाह, अंतरजातीय व अंतरधर्मीय विवाहों को प्रोत्साहन मिला है, तो कहीं विवाह की रस्मों-रिवाजों को गली सड़ी मानकर विवाह बंधन को तोड़ा गया । पतिव्रता, सेवा, त्याग, समर्पन, एकनिष्ठता आदि । परंपरागत और नवीन दृष्टिकोण का आधार लिये हुई विवाह संबंधी नूतन विचारप्रणाली नाटकों द्वारा नाटकों में प्रतिबिंबित होती दिखाई देती है।वात्सल्य, ममत्व दया, करूणा, सेवा, बंधुत्व, त्याग, भाईचारा, आत्मीयता,सत्य, आदि शाश्वत बातों की सीख परिवार में ही मिलती है। परिवार के सदस्यों द्वारा वे पीढ़ी दर-पीढ़ी संक्रमित किए जाते हैं। आलोच्य नाटकों में शाश्वत मूल्यों का विघटन और परंपरागत मूल्यों के संक्रमण विविध रूपों में चित्रित किए हैं। आधुनिकता, पाश्चात्य विचारधारा का अंधानुकरण, आत्मकेंद्रित संकीर्ण मनोवृत्ति, आपसी स्वार्थ से वात्सल्य, ममत्व एवं प्रेम संबंधों में अमुलाग्र परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान गतिशीलता एवं अर्थकेंद्रित युग ने नारी की मातृत्व संवेदनाओं को कुंद कर रख दिया है । नगरीय एवं महानगरीय परिवेश, आधुनिक पाश्चात्य धारा के परिणामस्वरूप प्लेतानिक, संवेदनापूर्ण, कोमल भावात्मक प्रेम स्तर का पावित्र्य नहीं रहा। बाह्य आकर्षण, शारीरिक मिलन की तृप्ति याने प्रेम यह संज्ञा प्रेममूल्य

को प्राप्त हुई है। आधुनिक जीवन दृष्टि, भौतिकवाद का आग्रह, स्त्री-पुरुष समानता, शिक्षा-दीक्षा यौन-स्वातंत्र्य की लालसा ने सामाजिक संदर्भों में तीव्र परिवर्तन की प्रक्रिया सक्रिय की है, जिससे संयुक्त एवं केंद्रीय परिवार, विवाह दांपत्य जीवन आदि से संबंधित प्रथाएँ टूट रही हैं। इनसे पारिवारिक संबंध चरमराने लगे हैं।

यौन-क्षेत्र में एकनिष्ठता का अभाव, पति-पत्नी में असामंजस्य, समझदारी का अभाव, यौन तृप्ति की तीव्र लालसा के कारण पूर्ण रूप से खंडित हो गए शारीरिक आकर्षण, इंद्रियों की तृप्ति और पावित्यता का अभाव आदि के कारण समाज में उच्छृंखलता व्याप्त हो गई है। विवाह एवं यौन क्षेत्र में परिवर्तीत परिणाम दांपत्य जीवन पर हुआ है जिससे दांपत्य जीवन विघटित होने लगे हैं। स्त्री एवं पुरुष के जीवन में तीसरे का प्रवेश, नीरस, बोझील, वितृष्ण पति- पत्नी संबंध, व्यसनातिरेकता, सामंजस्य का अभाव, महानगरीय जीवनदृष्टि के परिणामस्वरूप दांपत्य संबंध में निहित एकनिष्ठता, समर्पण, त्याग, सेवा, प्रेम आदि उदात्त शाश्वत तत्त्वों का विघटन हो रहा है। धनसंचय की भौतिकवादी दृष्टि ने सामाजिक तत्त्वों का विघटन किया है। जिससे समाज में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेईमानी का प्रसार हुआ । पारिवारिक आत्मीय संबंधों को अर्थ ने पूर्ण रूप से तोड़ दिया है । पारिवारिक, सामाजिक, विवाह, प्रेम, यौन- दांपत्य, आध्यात्मिक सौंदर्य मूलक तथा नैतिकता का विघटन, संक्रमणशील परिवेश, पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति और अन्य बाह्य घटकों के परिणामस्वरूप हुआ है । आठवें दशक के नाटकों में प्रतिबिंबित विभिन्न समस्याओं का विवेचन - विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। परिवार के स्वरूप में नित्य नए परिवर्तन हो रहे हैं। परिणामस्वरूप विविध प्रकार की समस्याएँ जन्म ले रही हैं। वैसे समस्याएँ तो प्राचीन काल से रही हैं परंतु शहरी कारण और औद्योगिकरण की प्रक्रिया में उन समस्याओं में कई परिवर्तन हुए हैं । इनका चित्रण नाटकों में दिखाई देता है । मुख्यतः वैवाहिक समस्याएँ, दहेज समस्याएँ एवं पूनर्विवाह की समस्या, तलाक समस्याएँ, बेरोजगारी की समस्याएँ, घुटन एवं अकेलेपन, चरित्रहीनता, धार्मिक एवं अंधविश्वास की समस्याओं का सशक्त चित्रण हुआ है । नाटकों के चरित्रों ने इन समस्याओं के उद्‌घाटन में बड़ा योगदान दिया है । विवेच्य नाटकों से यही संकेत मिलता है कि समाज की विकास में बाधा डालनेवाली समस्याओं को दूर करने के लिए समाज के हर घटक को सावधान व प्रयत्नशील रहना होगा । नाटक में प्रत्यक्ष रूप में किसी भी समस्या का हल नहीं मिलता केवल समस्या हल करने का संकेत मात्र आवश्य मिलता है। नाटक पढ़कर पाठक नाटक के संकेत को भली भांती समझ सकते हैं कि समाज का हित किस प्रकार हो सकेगा।

१.परिवार संस्था को विघटित करनेवाले बाह्यघटक औद्योगीकरण, निर्धनता, बेरोजगारी, स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक संरचना में परिवर्तन, स्त्री-पुरुष समानता,सामाजिक, पारिवारिक तत्त्वों का विघटन, यौन संबंधों की असंतुष्टि, भौतिकवादी विचारधारा, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण विवाह आधार में परिवर्तन आदि हैं।

२. ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, आत्मकेंद्रित संकीर्ण मनोवृत्ति, निर्धनता, बेकारी, अर्थलिप्सा, लालच आदि अपप्रवृत्तियाँ संयुक्त एवं केंद्रीय परिवारों के आत्मिक संबंधों के विघटन का मूल कारण बनती हैं।

३. परिवार संस्था को विघटित करनेवाली समस्याएँ, बेकारी, निर्धनता, दहेज, तलाक, रूढ़िवादीता, अंधविश्वास, विलासिता कुंठा, स्वार्थांधता, भ्रष्टाचार आदि हैं ।

४.मानव समाज में निहित मानव तत्वों में जैसे सहिष्णुता, त्याग, सौहार्द, बंधुत्व, धैर्य, निष्ठा, समर्पण, संयम, चारित्र्य संपन्नता के कारण मनुष्य स्वकेंद्रित हो गया । अतः आदर्श मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

५. आधुनिक युग की संत्रासमयी एवं उत्पीड़न की स्थिति में अनेक तनाव निर्माण हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में युवा सदस्यां को बुजुर्ग व्यक्तियों द्वारा सांत्वना और मानसिक आधार आवश्यक है।

६. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से धर्म व मोक्ष से संबंधित त्याग, सेवा, समर्पन, बंधुत्व, परोपकार आदि 'सत्यं, शिवं, सुंदरम' के उदात्त तत्त्वों की स्वस्थ समाज के लिए अनिवार्यता है ।